RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)

साहित्य और समाज का सम्बन्ध

डा0 सुभाष कुमार

अस्टिेन्ट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय, जखोली, रूद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड।

साहित्य में प्रचलित प्रत्येक अवधारणा का अपने समाज और परिवेश के साथ गहरा सम्बन्ध होता हैं। हिन्दी साहित्य के विशेष संदर्भ में बात की जाये तो आदिकाल से लेकर भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग एंव प्रयोगवादी युग आदि धाराओं का अपना एक सामाजिक संदर्भ है। जो वाद अपने साथ व्यक्ति की स्वतन्त्रता के हिमायती दिखाई देते है वह भी कुछ विशेष अर्थों में सामाजिक कहें जाते है। साहित्यकार समाज को अपनी कृति का मूल स्रोत बनाता है। अर्थात यदि देखा जाय तो साहित्य को समाज की प्रतिकृति या प्रतिरूप माना जाना चाहिए। परन्तु साहित्य और समाज के सम्बन्ध की बात जब हम करते है तो हमारे सामने एक बात मुख्य रूप से उपस्थित होती है कि हम साहित्यकार से जिस सामाजिक यथार्थ के प्रस्तुत करने की आशा से साहित्य की कल्पना करते है, साहित्यकार उस प्रकार से सामाजिक यथार्थ को साहित्य में प्रस्तुत नहीं कर पाता है वरन् उस सामाजिक यथार्थ को वह अपने ढ़ग से प्रस्तुत करता है। इस प्रकार साहित्यकार समाज से ही साहित्य की विषयवस्तु ग्रहण करता है चाहे समाज के सामने उस विषयवस्तु को किसी भी रूप में सामने रखे।

साहित्य और समाज के सम्बन्धों की चर्चा आज पुरजोर के साथ जोरों पर है। वास्तव में मानव जीवन के स्नेहपूर्ण रागात्मक विकास जो समाज में जन्म लेकर फलते–फूलते है का ही नाम साहित्य है। इसलिए साहित्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। साहित्य वह है जो इस समष्टि से साहित्यकार की चेतना के बाद उत्पन्न होता है। इस कारण से साहित्य और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। ऐसें अनके उदाहरणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि समाज को बदलने का काम साहित्य ही करता है– ''हमारी संस्कृति ने साहित्यिकारों और कवियों को ऊँचा स्थान दिया है। यहाँ पर जिनकी धार्मिक सत्ता चली वे सब बहुत बड़े कवि थे। आज तक हजारों वर्षो से वाल्मीकि, व्यास, शुक की जितनी सत्ता चली उतनी और किसी की सत्ता नहीं चली। उनकी यह सत्ता केवल धर्म तक की सीमित नहीं रही, ऐहिक–पारलौकिक और पारमार्थिक जीवन पर भी रही यानि कुल जीवन पर उनकी सत्ता है।''(1)

साहित्य और समाज का गहरा सम्बन्ध है वे एक दूसरे पर निर्भर है। साहित्य का समाज के बिना कोई महत्व नहीं है और समाज का साहित्य के बिना। साहित्यकार समाज के ब्राहय और आन्तरिक दोनों घटकों को उद्घाटित् करता है। इसिलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। इसी कारण साहित्यकार समाज में घटित आम जनता के सुख–दुःख को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त करते है। मूलतः साहित्य का उद्देश्य लोक कल्याण से सम्बन्धित विचारों को प्रकट करना है। जिस साहित्य में 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' की वास्तविकता होती है वही साहित्य समाज के साथ अपना सम्बन्ध मजबूत कर पाता है और समाज को एक नई दिशा प्रदान करता है– "साहित्य का उद्देश्य ही समाज का कल्याण होना चाहिए।" अर्थात साहित्य में समाज का मंगलभाव और समाज को परिवर्तित करने की क्षमता होनी चाहिए। वह समाज की भावनाओं के साथ चलता हैं साहित्य समाज में घटित विकृत व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने का काम करता हैं। और समाज के हर पहलू को प्रभावित करता हैं। इसिलिए साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज का चित्रण करता है।''(2)

साहित्य और समाज का सम्बन्ध इस बात से और ज्यादा पुष्ट हो जाता है। कि साहित्य समाज के आज कल और आज को भी प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में टी0एस0 इलियट ने लिखा है कि –''केवल अतीत ही वर्तमात को प्रभावित नही करता है, वर्तमान भी अतीत को प्रभावित करता है''(3) इस तर्क से प्रत्येक युग में साहित्य के नये विकास रूप उसके पूर्वरूपों के मूल्यांकन को प्रभावित करते रहते है।

साहित्य और समाज के सम्बन्धों के बारे में विभिन्न साहित्यकारों द्वारा यह धारणा बहुत पहले ही प्रचलित हो चुकी है कि–किसी भी जांति के साहित्य का इतिहास उस जाति के सामाजिक एंव राजनीतिक वातावरण को ही प्रतिबिम्बित करता है या साहित्य की प्रवृत्तियां सम्बधित समाज की प्रवृत्तियों की सूचक होती है। फिर भी इस धारणा को एक सुव्यवस्थित–सिद्वान्त के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय फ्रैंच विद्वान–तेन को है जिन्होने अपने अग्रेंजी साहित्य के इतिहास में प्रतिपादित किया कि–''साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों के मूल में तीन प्रकार के तत्व सक्रिय रहते हैः जाति (Race) वातावरण (Miliec) क्षण विशेष (Moment)।'' तेन ने अपनी व्याख्या के द्वारा यह स्पष्ट किया कि किसी भी समाज के साहित्य को समझने के लिए उस साहित्य से सम्बन्धित जातीय परम्पराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एंव सामयिक परिस्थितियों का अध्ययन विश्लेषण आवश्यक है।''(4) अर्थात हम किसी भी देश के साहित्य का अध्ययन, मनन विश्लेषण व रसास्वादन तभी कर सकते है जब हम उस देश की परम्पराओं रीतियों–रिवाजों, आचार–विचार, सभ्यता–संस्कृति उस राष्ट्र का राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण और समसामायिक परिस्थितियों का ज्ञान हो तभी हम किसी राष्ट्र और उसके समाज से जुडे साहित्य को समझ सकते है कि समाज और साहित्य का क्या सम्बन्ध होता है, और ये सभी उपरोक्त परिस्थितियाँ किसी प्रकार से साहित्य और समाज का परस्पर सम्बन्ध स्थापित कराने में अपना योगदान स्थापित करती है।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

साहित्य और समाज के सम्बन्धों की बात हम जब–जब करते है तब–तब हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का स्मरण स्वतः ही हो जाता है। हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा में सर्वोच्च स्थान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी एवं उनके द्वारा रचित हिन्दी साहित्य के इतिहास को जाता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929 ई0) मे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्द सागर की भुमिका के रूप में लिखा गया था। जिसे आगे परिवर्द्धित एवं परिष्कृत करके स्वतन्त्र पुस्तक का रूप दे दिया गया। जिसके आरम्भ में ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने

साहित्य और समाज के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि– ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्तियों के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चितवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्यक परम्पराओं के साथ उनका समजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चितवृति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है। ''(5)

इस उदाहरण के अनुसार कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी साहित्य का मूल समाज की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व धार्मिक परिस्थितियों को माना है और इन सभी से सांहित्य का निर्माण होता है और इन सभी परिस्थितियों के परिवर्तन होने के साथ–साथ साहित्य मे भी परिवर्तन होता चलता है। इस दृष्टिकोण से भी हम कह सकते है कि साहित्य और समाज का अभिन्न सम्बन्ध होता है।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित होता हैं। व्यक्ति समाज में रहकर ही साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म देता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्तिकाल का जन्म मुस्लिम आक्रान्ताओं के कारण मानते है परन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी साहित्य और समाज का सम्बन्ध स्थापित करते हुए उन धारणाओं को खण्डित करते है, जो युगीन प्रभाव के एंकागी दृष्टिकोण पर आधारित थी। उन्होने अत्यन्त सशक्त स्वरों में उद्घोषित किया है कि– ''भक्ति आन्दोलन न तो तद्युगीन पराजित हिन्दू जाति की निराशा से उद्वेलित है और न ही इस्लाम की प्रतिक्रिया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह हैं कि सांतवी–आठवी शती में जबकि भारत की धरती पर इस्लाम की छाया भी नहीं पडी थी, दक्षिण के वैष्णव भक्तों में भक्ति अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान थी ''मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम न आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है।''(6) इस प्रकार कहा जा सकता है कि हम जब भी समाज मे साहित्यिक विशेषताओं के जन्म लेने और फलने–फूलने की बात करते है तब–तब हम पाते है कि समाज में जो–जो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ जन्म लेती है उनके मूल में सामाजिक प्रभाव अपने चरम पर होता है और यही सब परिस्थितियाँ मिलकर हमारे साहित्य को श्रेष्ठ बनाती हैं।

समाज में रहते हुए साहित्यकार जो अनुभव करता है, वही अनुभव एवं अभिव्यक्ति उसके साहित्य के प्रतिबिम्ब में दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में डॉ0 नगेन्द्र लिखते है कि– ''इस सिद्वान्त का जन्म 18 वीं तथा 19 वीं शती में साहित्य में यथार्थवाद के प्रचार–प्रसार के साथ हुआ । बाद में इस सिद्वान्त में साहित्य की समाजशास्त्रीय संकल्पना में विशेष भूमिका अदा की। इस सिद्वान्तानुसार प्रत्येक साहित्यकार परिचयता समाज में रहकर जो अनुभव लेता है, उसी को शब्दबद्व करके वह समाज के सम्मुख रखता है। उसकी रचना के चारों ओर के वातावरण का प्रत्यांकन जाने–अनजाने में हो जाता है।''(7) इस प्रकार साहित्यकार अपने साहित्य में सामाजिक परिवेश को महत्व देता है। साथ ही देश की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी महत्वपूर्ण रहती है। इस प्रकार साहित्य और समाज के सम्बन्ध को प्रत्यक्ष देखा जा सकता हैं।

वास्तव में साहित्य समाज का दपर्ण है यह शत प्रतिशत सही है। क्योंकी मनुष्य के भावो की तंरग साहित्य में मिलती हैं। विगत के अनुभव एवं वर्तमान से परिचय सिर्फ परिचय नही तो जीवन का दूसरा अंग साहित्य के माध्यम से सामने आता हैं। अत: साहित्य सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं विभिन्न आन्दोलनों से अवगत कराता हैं। किसी भी साहित्य का मूल्यांकन इस बात से भी किया जाता हैं कि वह साहित्य समाज के विभिन्न अगों की समीक्षा किस प्रकार से करता हैं। साहित्य सत्य एवं काव्य सौन्दर्य के नियमों द्वारा निर्धारित अनुबन्धों के अनुसार जीवन की समीक्षा है''(8)

साहित्य में समाज के यथार्थ को अधोरेखित किया जाता है। डा0 नगेन्द्र कहते हैं कि – ''महान लेखक सामाजिक जीवन का केवल वर्णन ही नहीं करते। लेखक का दृष्टिकोण स्वभावतः अधिक समीक्षात्मक होता हैं। उसके लिए ऐसे प्रसंगों का आविष्कार करना जरूरी होता हैं। जिनमें उसकें पात्र अपनी नियति की खोज कर सके। समाज केवल संस्थाओं का साधन मात्र नही है''(9)।

साहित्य और समाज का गहरा सम्बन्ध है। समाज और साहित्य का स्वतन्त्र सिद्वान्त 19 वी शताब्दी के अन्तिम चरण में उभरकर सामने आया। भारत में भी आरम्भ से ही काव्य के स्वतन्त्र अस्तित्व की स्वीकृति मिलती है । भरत ने नाटक कला को चारों वेदों से पृथक पंचम वेद की संज्ञा दी है।उसी तरह कुन्तक ,मम्मट, आनन्दवर्धन आदि को भी उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। पर अधिकांश मनीषियो में साहित्य और जीवन के सम्बन्ध को स्वीकार कर उसकी स्वतन्त्र सत्ता का धिक्कार किया और समाजवादी आलोचकों ने इसे विसंगतिपूर्ण माना है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि साहित्य की उपज समाज की देन होती है।साहित्य का मूलाधार मानव जीवन है। साहित्य मनुष्य के सुख–दुःख आशा आकांक्षाओं से जुडता है। वह मनुष्यों की आन्तरिक वेदनाओं की अभिव्यक्ति भी करता है इसिलिए प्रख्यात आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते है कि–"साहित्य का मानव जीवन से चिरन्तन सम्बन्ध है। साहित्य का सृष्टा मनुष्य है। मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है। मानव जीवन विकासशील वस्तु हैं इसलिए साहित्य भी विकासशील है।"(10)

समाज के परिवर्तन में साहित्य सहज रूप में अपनी भूमिका निभाता है। इसी सन्दर्भ में डॉ0 नगेन्द्र साहित्य का समाजशास्त्र नामक ग्रन्थ में लिखतें है कि– "कला और समाज के परस्पर सम्बन्ध कि उपेक्षा नही कि जा सकती क्योंकि कला स्वयं ही एक सामाजिक घटना है। महान कला मानक जीवन की सार्वभौम सता कि प्रतिष्ठा करती है, किन्तु इस सार्वभौम रूप

की सिद्वि विशेष के द्वारा ही है क्योकि कला का सृष्टा कलाकार या एक विशेष युग एवं समाज, एक विशेष संस्कृति और वर्ण के साथ सम्बन्ध होता है। कला का प्राणतत्व है सामजस्य किन्तु इस सामजस्य के मूल में विशेष और सार्वभौम का द्वन्द्व निहित रहता है। जिसके कारण कला की मूल प्रकृति अनिश्चित एवं परिर्वतनशील बन जाती है। "[(11)] इस प्रकार से साहित्य और समाज के सम्बन्धों के बारे में अनेकानेक सिद्वान्त स्थापित हुऐ है।

इन सभी बातों के साथ–साथ समाज व साहित्य के सम्बन्धो के बारे में यह भी देखने योग्य तथ्य है कि साहित्य और समाज के सम्बन्धों मे साहित्य का उद्देश्य किस प्रकार का हैं। वास्तव मे किसी भी साहित्यकार और साहित्य का उद्देश्य मानव जीवन का चित्रण होना चाहिए क्योंकि साहित्य में जितना चित्रण समाज का होगा वह साहित्य उतना श्रेष्ठ ओर उच्च कोटि होगा हम साहित्य का अवलोकन, अध्ययन, मनन और विश्लेषण करते है परन्तु जिस साहित्य का जुडाव सामान्य जन ओर उसके सुखों–दुःखों से नही होता हे वह साहित्य उत्तम कोटि का साहित्य नही होता है। अगर साहित्य का जुडाव आम जन के सरोकारो से होगा तो वह साहित्य उत्तम कोटि का साहित्य होगा। रीतिकालीन साहित्य का जुडाव आम जनता के सुख– दूःख से नही था इसिलिए वह साहित्य उत्तम साहित्य नही कहला पाया। इसके वीपरीत जब हम आधुनिक काल के साहित्य की बात करते है तो हम पाते है कि इस काल के साहित्य मे सात्यिकारों ने अपने समय के मानव जीवन की अशाओं–निराशाओं,सुखों–दुःखों का सजीव चित्रण किया यही साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए। मनुष्य समाज में रह कर ही अपना जीवन बीता सकता है। वह एक सामाजिक प्राणी हैं समाज को छोडकर वह अलग नही रह सकता है। इसिलिए मनुष्य पशु कि अपेक्षा बुद्विमान प्राणी माना जाता है इन सभी बातों का जिक्र साहित्य करता है इसिलिए साहित्य ओर समाज का गहरा सम्बन्ध माना जाता है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सहज अनुभूति की कलात्मक शाब्दिक अभिव्यक्ति साहित्य है। इसी का जीवन से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है– कि यह इसे अनायास ही जीने योग्य बना देता है।

हम उसके मर्म को समझकर उसकी गरिमा का अनुभव करके अपना जीवन सफल बना सकते है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने साहित्य का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि–"जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गतिहीनता और पर मुखापेक्षिता से बचा ना सके उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को दुखःकातर और संवेदनशील न बना सके उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।" 12

उपरोक्त अध्ययन मनन और विश्लेषण के पश्चात हम कह सकते है। कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में उसकी अपनी एक स्वतन्त्र विचारधारा एवं उसका अपना व्यक्तित्व उसको नई पहचान दिलाता है। समाज में जब व्यक्ति अपने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक वातावरण से प्रभावित होकर अपने विचारों को प्रकट करता है तो इस प्रकार की विचारधारा को साहित्यिक विचारधारा कहा जाता है। इसीलिए **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी** ने कहा है कि ''साहित्य समाज का दर्पण होता है''। इसलिए कहा जाता है कि समाज के लिए साहित्य एवं साहित्य के लिए समाज का होना अति आवश्यक है। वास्तव में समाज में जो चल रहा होता है उसका प्रतिबिबंन साहित्य में होता रहता है।

आत्मा और शरीर का जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध साहित्य और समाज का होता है। समाज की भावनाऐं अपेक्षाऐं ही साहित्यिक विचार धारा के रूप में समाज में साहित्यकारों को जन्म देती है। साहित्यकार समाज से ही आपने साहित्य की विषय वस्तु ग्रहण करता है। समाज की प्रत्येक स्थति से साहित्यकार व साहित्य प्रभावित होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हमारा साहित्य वैदिककाल से लेकर अद्यावधि तक परिवर्तित होता आया है जिस–जिस काल में लोगों की भावनाऐं जिस प्रकार की रही उसी प्रकार का साहित्य जन्म लेता चला गया। एक काल के साहित्य में समाज की जो बाते गुण थी वही बाते आगे के काल में जाकर अवगुण बन गई थी। साहित्य वास्तव में समाज के सामाजिक, संस्कृतिक, राजनैतिक धार्मिक व भाषायी विकास और प्रगतिशीलता को प्रदर्शित करता है। किसी समाज की किस क्षेत्र मे कितनी उन्नति अथवा अवनति हुई है इस बात की जानकारी हमें उस देश के साहित्य का अध्ययन करके प्राप्त होती है।

आज के वर्तमान भौतिकवादी युग में संस्कृति का जो गहरा संकट और विश्व में भौतिक–वैज्ञानिक चिन्तन, धर्म के क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए है साहित्य उन्हें पहचानता है और निष्पक्ष रूप से उसकी परख कर उसकी विसंगतियों को भी प्रकट करता है अतः साहित्य और समाज का अभिन्न सम्बन्ध है।

जिस प्रकार मनुष्य दर्पण के सामने खडा होकर अपनी आकृति नाक–नक्श को देख लेता है ठीक उसी प्रकार किसी समाज या जाति के साहित्यरूपी आईने मे उस समाज के रूप का अर्थात उसकी सभ्यता व संस्कृति का पता लगाया जा सकता है। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से अपने अन्तर्जगत में विद्यमान भावों का प्रकटीकरण करता है। साहित्यकार समाज में जीता है अतः उससे अलग रहकर वह नहीं रह सकता जाने–अनजाने में समाज उसे प्रभावित करता है। वह यह नही कह सकता की इतने समय तक मैं समाज के प्रभाव से अछुता रहा है। उपरोक्त अध्ययन, मनन, विवेचन, विश्लेषण और निष्कर्ष के आधार पर हम कह सकते है कि साहित्यकार समाज का अभिन अंग होता है और वह साहित्य की रचना भी समाज के माध्यम से ही करता है और इस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं। साहित्य समाज का मंगल विधान एवं मानव के कल्याण की कामना भी करता है। इसलिए यह पूर्णतः सिद्ध होता है कि साहित्य व समाज एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित रहते है।

संदर्भ

(1) साहित्य और समाज का अन्तर्सम्बन्ध, प्रो0 पुष्पेन्द्र दुबे, पृष्ठ–01, संस्करण 2013, (शोध पत्र)
(2) साहित्य और समाज, विजयदान देथा–राजस्थानी शोध संस्थान चोपासनी, जोधपुर, 1960, पृष्ठ–05
(3) हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा0 नगेन्द्र, डा0 हरदयाल, नेशनल पाब्लिशिंग हाऊस दरियागंज नयी दिल्ली, 2009,–पृष्ठ–01,
(4) हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा0 नगेन्द्र डा0 हरदयाल, नेशनल पाब्लिशिंग हाऊस दरियागंज नयी दिल्ली, 2009–पृष्ठ–23,

(5) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रिया प्रकाशन गोविन्दपुर, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश, 2012, पृष्ठ–02
(7) साहित्य का समाजशास्त्र डॉ0 नगेन्द्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली–1980, पृष्ठ–12
(8) साहित्य का समाजशास्त्र डॉ0 नगेन्द्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली–1980, पृष्ठ–15
(10) नया साहित्य नया प्रश्न, नन्ददुलारे वाजपेयी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1989 पृष्ट–03
(11) साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ नगेन्द्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1990, पृष्ट–11
(12) मधुमति– डॉ धर्मपाल मैनी, डायमण्ड बुक्स प्रकाशन नई दिल्ली, 1988, पृष्ट–15

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)